Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2024 GISRRJ | Volume 7 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

द्विवेदी युग का साहित्य : दलित चेतना और आंदोलन

डॉ० कुणाल किशोर

पूर्व शोध छात्र, हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

Article Info
Volume 7, Issue 6
Page Number : 108-113

Publication Issue :
November-December-2024

Article History
Accepted : 10 Dec 2024
Published : 20 Dec 2024

शोध-सार : द्विवेदी युग (1902–1920) हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कालखंड है, जिसे भाषा, शैली और विषयवस्तु के स्तर पर नवजागरण का युग कहा जाता है। इस युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में 'सरस्वती' पत्रिका ने साहित्यिक चेतना को दिशा दी। हालांकि, इस काल में दलित चेतना का स्वर अपेक्षाकृत मंद था, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं और रचनाएं दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। द्विवेदी युग में दलित चेतना का स्वर अपेक्षाकृत मंत्र था। इस युग के अधिकांश साहित्यकारों ने सामाजिक सुधार की बात तो की, लेकिन दलितों की समस्याओं को केंद्र में नहीं रखा। हालांकि इस काल में दलित लेखकों की कुछ संरचनाओं प्रकाशित हुई, जो आगे चलकर दलित साहित्य आंदोलन की नींव बनी।

बीज शब्द : दलित, दलित साहित्य, दलित चेतना, द्विवेदी युग, आधुनिक हिंदी कविता, सरस्वती पत्रिका।

दलित साहित्य के आधुनिक काल की पृष्ठभूमि: - भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान पुनर्जागरण की लहर चली। पुनर्जागरण ने मध्यकालीन सामंती मूल्यों और परंपराओं को ध्वस्त करते हुए हिंदू समाज में फैली हुई बुराइयों पर प्रहार किया। यह युग एक तरह से सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सुधार का आंदोलन था। 19वीं शताब्दी में दलितोद्धार का महान कार्य करने वालों में ज्योतिबा फुले का नाम लिया जाता है उन्होंने और उनकी पत्नी सावित्री फुले ने अपना सारा जीवन दलितों पिछड़ों और महिलाओं को शोषण से मुक्ति दिलाने व उनमें स्वाभिमान जगाने में लगा दिया। ''ज्योतिबा फुले आधुनिक भारत में क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन आंदोलन के मूल प्रवर्तक है, यह बात सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है उनके साहित्य को पढ़ने से ही इस बात का पता चल जाता है कि उन्होंने किस तरह हिंदू समाज के शुद्रादि – अतिशुद्रो (दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों) की समस्याओं को उजागर करने की कोशिश की है।''[1]

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले के सम्मान केरल केनारायण गुरु ने भीदलितों में स्वाभिमान जगाया नारायण गुरु ने भी'जाति मत पूछो जाति मत बनाओ और जाति के बारे में मत सोचो के नारे को लोकप्रिय बनाया। जाति की धारणा को ही खत्म कर देना उस समय की तात्कालिक जरूरत थी। नारायण गुरु ने जाति व्यवस्था जैसी भद्दी और आत्मा के लिए हानिप्रद प्रथा पर ऐसी काव्यात्मक से कोड़ेफटकारे कि उसने लोगों का रवैया ही बदल दिया।''[2]

द्विवेदी युग में दलित चेतना की सीमाएं - द्विवेदी युग में दलित चेतना का स्वर अपेक्षाकृत मंद था इस युग के अधिकांश साहित्यकारों ने सामाजिक सुधार की बात तो की, लेकिन दलितों की समस्याओं को केंद्र में नहीं रखा। द्विवेदी युग में दलित चेतना का स्वरूप प्रारंभिक अवस्था में था। हालांकि इस युग में कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं और रचनाएं हुई,जिन्होंने आगे चलकर दलित साहित्य आंदोलन की दिशा तय की।स्वामी अछूताआनंद 'हरिहर' और ज्योतिबा फुले जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों ने दलित चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ० वीर भारत तलवार ने अपनी शोध पुस्तक ''रस्साकशी'' में रहस्योद्घाटन किया है कि प्रताप नारायण मिश्र पुराणपंथी, छुआछूत- समर्थक और समाज सुधार के विरोधी थे। वह समाज - सुधारको से इसकदर घृणा करते थे कि उन्हें दंडित किए जाने के पक्षधर थे। उनके अनुसार भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट आदि लेखक-पत्रकार जो नवजागरण के अग्रदूत मानेजाते हैं, किसी भी तरह के सामाजिक सुधार और परिवर्तन के विरोधी थे।वे हिंदुत्व, वर्ण-व्यवस्था और जातिभेद के समर्थक और मुस्लिम-विरोधी इस तरह थे जैसा कि आज के संघ परिवार के लोग हैं। दलितों के प्रति बालकृष्ण भट्ट के विचार, जो उन्होंने अपने मासिक पत्र 'हिंदी प्रदीप' में व्यक्त किए थे, जरा गौर करें- "सन 1857 के गदर में देखा गया है कि कोरी, चमारों,धूनिया, जुलाहो, हिजड़ो के जी में भी बहादुरी का बीज जमा, पर जब काम पडा तो उन लोगों के मुंह से सिवा इसके कि आपकी सलामती रहे, बलैया लूँ, आप ही का दिया टुकड़ा खाने वाला हूं और कुछ ना निकला। अपनी-अपनी जान लेकर भागे।"इस पर डॉक्टर तलवार ने ठीक ही टिप्पणी की है कि "इस गढे हुए दलित-विरोधी किस्से में भद्रवर्गीय ब्राह्मण की अहंमान्यता झांक रही है, जिसने वर्षों से अंग्रेजों की चाकरी बजा रही द्विज जातियों की स्वार्थपरता को बिल्कुल छुपा लिया है।"[3]

द्विवेदी युग की सामाजिक पृष्ठभूमि- द्विवेदी युग में भारत सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिकपुनर्जागरण के दौर से गुजर रहा था।आर्य समाज ब्रह्म समाज और थियोसोफिकल सोसायटी जैसे आंदोलन ने सामाजिक सुधार की दिशा में प्रयास किया। हालांकि,ये सुधार मुखत: सवर्ण समाज तक सीमित रहे और दलित समुदाय की समस्याओं को व्यापक रूप से संबोधित नहीं किया गया।

दलित मत साहित्य को मनोरंजन की चीज नहीं मानते, उनके लिए साहित्य वह विचार है, जो क्रांति और प्रतिक्रांति दोनों में अपनी भूमिका निभाती है। यह साहित्य की क्रांति ही है जो कबीर ने की थी और जिसकी प्रतिक्रांति में आज भी रामचरितमानस का सर्वाधिक प्रचार किया जाता है। इसलिए दलित चिंतकों ने कभी भी साहित्य को मनोरंजन की चीज नहीं

माना। उन्होंने क्रांति के लिए साहित्य की सर्जन की। पत्रकारिता भी साहित्य का ही अंग है। 19वींशताब्दी में पत्रकारिता के महत्व को दलित चिंतकों ने भी महसूस कर लिया था। इसी आवश्यकता के तहत देश भर में दलित चिंतकों ने अपने कई अखबार निकाले। स्वयं डॉ० अंबेडकर ने कई अखबार निकालेथे, जिनकी दलित-मुक्ति के आंदोलन में क्रांतिकारी भूमिका थी। भारतेंदु की पत्रिकाओं से लेकर प्रताप नारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' तक में दलित-समस्या दृष्टिगत नहीं होती है।[4]

आज का जो दलित साहित्य लिखा जा रहा है, यधपिउसकी परंपरा काफी सुदीर्घ एवं प्राचीन है तथापि उस पर सबसे अधिक प्रभाव बाबा साहेब अंबेडकर का है। दलित समाज को डॉ० अंबेडकर के रूप में पहली बार एक प्रखर व्यक्तित्व मिला, जो इसके लिए ज्योति स्तंभ साबित हुआ और जिसने युगों से अंधेरे में भटकते हुए इस वर्ग को राह दिखाने का काम किया।[5]

डॉ अंबेडकर ने स्वयं दलित होने की पीड़ा भोगी ही नहीं, बल्कि उसके कारणों का गहराई से मंथन भी किया था। अत: दलितो में सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्होंने दलितों में प्राण फूंकने का काम किया। छुआछूत व जातिवाद के निवारण के लिए उन्होंने न केवल कई सामाजिक आंदोलन चलाए अपितु समाचार पत्र मुख्य नायक वह बहिष्कृत भारत द्वारा अपने विचारों को भी अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा लिखित दर्जनों पुस्तके तथा समय-समय पर दिए उनके व्याख्यान दलित साहित्य के अजस्त्र प्रेरणा स्रोत हैं, जिनके आधार पर ही दलित साहित्य का सृजन हुआ।

20वीं सदी का उतराध्य दलित साहित्य लेखन व विमर्श के लिए व्यापक रूप से चर्चित रहा, किंतु इससे पूर्व 20वीं सादी के आरंभ में ही स्वयं दलित लेखकों द्वारा इसका बीजंकुरण हो चुका था।हिंदी में दलित साहित्य आंदोलन को आगे लाने में कमलेश्वर कीभूमिका महत्वपूर्ण है। उन्होंने सारिका के मई 1975 के अंक में आज का यथार्थ समान समांतर संसार शीर्षक वक्तव्य दलित साहित्य की पैरवी की। उन्होंने कहा-"सोचने के लिए सवाल यह था किमानव कल्याण की इतनी खूबसूरत पैरवी करने वाला देश इतने बड़े अकल्याणकारी यातना शिविर में क्यों बदल गया है ? भारतीय चिंतन और विचारधाराओं की मानव कल्याणकारी दृष्टि के इतने विराट जल प्लवन के बावजूद या महादेश मानवीय मूल्यों की सतह पर इतना बंजर क्यों हो गया है। क्या सिर्फ यह मान लिया जाए कि कुछ दुष्टों या कुछ दुष्ट वर्गों ने इन विचार बीजों को रोपा नहीं जाने दिया है ?"[6]

कमलेश्वर ने आगे और कहा ''आज का समानांतर और दलित साहित्य तमाम सौंदर्यवादी मूल्य की परवाह न करते हुए मनुष्य के औसत दुख-सुख, आकांक्षाओं की बात करता है।'' वस्तुत: दलित पीड़ा, उनमें व्याप्त तीव्र असंतोष, आत्मचेतना अस्मिता जागृत करना तथा सभी तरह के प्रस्थार्पित शक्तियों का प्रतिरोध करना दलित साहित्य का उद्देश्य रहा है और 19वीं सादी का दलित साहित्य इसमें कामयाब भी रहा है। हिंदी दलित कविता को प्रतिष्ठित करने में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम अग्रण्य है।

सभी दलित कवियों को जातीयता के अभिशाप, छुआछूत, भेदभाव, अपमान आदि का सामना करना पड़ा है।इनकी कविताओं में व्याप्त अनुभव स्वानुभूत है। अत: इनमें जहां एक और गहरी वेदना है, वह दूसरी ओर उससे मुक्त होने की छटपटाहट भी है। अत: कविताओं के तेवर अत्यधिक तीखे हैं, जिनमें वर्णवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के साथ मनुष्य होने के नाते अधिकार मांगने की इच्छा भी है। आधुनिक भारतीय इतिहास के पुनर्जागरण ने जहां एक और सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक आंदोलन का अलख जगाया वहीं दूसरी ओर सदियों से अपने मनोचित अधिकारों से वंचित दलित जातियों में स्वाभिमान भी जागृत किया। इसी कारण सदियों से सोई मानवता ने करवट ली और उसने वह सब कर दिखाया, जिसके लिए उसे शताब्दियों से इंतजार था। दलितों में अलख जगाने में महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले ने कोई कसर नहीं छोड़ी।फुले के पश्चात आधुनिक काल में दलितकविताविकसित हुई। आधुनिक काल दलित साहित्य लेखन के लिए स्वर्णिम काल है। इसके हाशिए पर धकेल गए व्यक्ति की पीड़ा को मुख पृष्ठ का हिस्सा बनाने का जो अवसर प्रदान किया गया, उसमें बाबा साहब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता।

दलित चेतना आंदोलन– द्विवेदी युग के समय से हिंदू समाज मध्ययुगीन विश्वासों,परंपराओं, रूढ़ियों और समाज की व्यापकता के साथ–साथ उसकी समस्याएं भी बढ़ने लगी। जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारत में समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्मित हुई थी किंतु द्विवेदी कल में उसका जो रूप था वह समाज को सशस्त्र विभाजित कर उसके प्रत्येक खंड में दूसरों के प्रति घृणा, संकीर्णता और स्वार्थ– पार्थक्य की भावना की वृद्धि करने वाला ही था।शुद्र(दलित) और अस्पृश्य वर्ग के ऊपर किए गए अत्याचार मानवता और भारतीय सभ्यता के आदर्शों के प्रतिकूल और हिंदू जाति के ऊपर कलंक स्वरूप थे।

द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक परिघटना महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में 'सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन था। इस पत्रिका ने हिंदी साहित्य में प्रगतिशील मूल्यों का बीजवपन किया और आधुनिक हिंदी कविता की नींव रखी। भाषा के स्तर पर ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता लिखने को समर्थन देना हो या पत्रिका में स्त्रियों, अस्पृश्यों के समर्थन में समाज सुधार की भावना का प्रसार, पत्रिका ने हमेशा प्रगतिगामी तेवर बनाये रखे। इसका सम्पूर्ण श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को है। उन्होंने ही 'सरस्वती' में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' का प्रकाशन किया जो आज भी हिंदी दलित कविता में क्लासिक मानी जाती है और सम्भवत: आधुनिक हिंदी दलित साहित्य की प्रथम प्रकाशित कविता है–

हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी
हमनी के साहेब से मिनती सुनाइबि।
हमनी के दुख भगवानओं न देखता ते,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।

पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजां,
बेधरम होके रंगरेज बानि जाइबिजां,
हाय राम! धसरम न छोड़त बनत बा जे,
बे–धरम होके कैसे मुंहवा दिखइबि॥[7]

द्विवेदी युग में हिंदी साहित्यकारों एवं समाज चिंतकों ने इस अमानवीय वर्ण–व्यवस्था एवं जातिगत असमानता के खिलाफ आवाज उठाई एवं अछूतों (दलितों) के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। साहित्यविदों ने समझ लिया कि जातिगत असमानता जैसे सामाजिक विकृतियों का मूल कारण जाति व्यवस्था ही है।'समाजशास्त्र' नामक लेख में 'सत्यशोधक' महोदय यही कहते हैं कि–"हिंदुओं में बाल–विवाह,वृद्ध–विवाह, अनमेल–विवाह, विवाहों में फिजूल खर्च इत्यादि बहुत सी सामाजिक कुरीतियों प्रचलित हैं उनको दूर करने के लिए सैकड़ो सभाएं स्थापित हुई हैं।।। पर इन सभाओं के कार्यकर्ताओं ने यह विचार नहीं किया कि हमारी सारी सामाजिक कुरीतियों की जड़ वर्ण–व्यवस्था है।जातियों की यह छोटी–छोटी सभाएं जो वर्ण व्यवस्था के भेद को और पुष्टकरती है लाभ के साथ–साथ हानि भी पहुंचाएगी और व्यापक सुधार के आंदोलन में विघ्न डालेगी।"

आलोचनात्मक दृष्टिकोण : कुछ विद्वान यह है मानते हैं कि द्विवेदी युगीन साहित्य मुख्यत: ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण से प्रेरित था, जहां दलित की स्थिति को एक 'सुधारने योग्य' विषय की तरह देखा गया, ना कि उनके अधिकारों के आंदोलन के रूप में। यह 'पितृसत्तात्मक सुधारवाद' था,जिसमें दलितों को बोलते नहीं दिया गया बल्कि उनके लिए 'बोलने का कार्य उच्च वणों ने किया। डॉ रामविलास शर्मा ने भी लिखा –"द्विवेदी युग में दलित चेतना का आभाव है,पर सामाजिक विषमता के विरुद्ध कुछ स्वरअवश्य सुनाई देते हैं।"[8]

निष्कर्ष : द्विवेदी युग में दलित चेतना संगठित रूप में साहित्य में नहीं आई थी, परंतु इसके बीज रूप अवश्य मौजूद थे। यह युग सुधारवादी था और इसी सुधार की भावना ने आगे चलकर प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद और अन्य अंबेडकरवादी लेखकों को प्रेरणा दी। दलित चेतना का उभार स्वतंत्र रूप से 1930 के बाद दिखाई देता है लेकिन उसका विचारोपन द्विवेदी युग की सामाजिक आलोचना और सुधारवादी लेखन में देखा जा सकता है।

संदर्भ-सूची :

1.महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, भाग–1, भूमिका से
2.अय्यप्पा पणिक्कर के विचार, कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका से उद्धरत, पृष्ठ – 108
3.वीर भारत तलवार, रस्साकशी पृष्ठ – 260
4.सरस्वती सचित्र मासिक पत्रिका, भाग – 35, खंड – 1, जनवरी – जून
5.डॉ एन सिंह, दलित साहित्य परंपरा और विन्यास, पृष्ठ 78
6.कमलेश्वर, सारिका, मई 1975, पृष्ठ – 10
7.हीरा डोम, अछूत की शिकायत, 'सरस्वती',सितंबर 1914, भाग 15, खंड 2, पृष्ठ संख्या 512–513
8.रामविलास शर्मा, हिंदी जातीयता और समाज, पृष्ठ – 101